खंड V
अलौकिक की परिकल्पना

समय रेखा

अकबर की धार्मिक विश्व दृष्टि

रूढ़िवादी *उलमा* के साथ संघर्ष

इबादत खाना

महज़र

तौहीद-ए इलाही

सुलह-ए कुल

अकबर तथा जैन

अकबर तथा जेसुइट

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

अकबर की *इबादत खाना* सभा में जेसुइट (रूडोल्फो एक्वाविवा और फ्रांसिसको हेनरीक़), फतेहपुर सीकरी, *अकबरनामा* में संग्रहित, लघुचित्र, *circa* 1605

चित्रकार : नर सिंह

फोटोग्राफ स्रोत : चेस्टर बेटी म्यूज़ियमः http://chesterbeatty.i.e.

स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Jesuits_at_Akbar%27s_court.jpg

इकाई 17 राज्य और धर्म*

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

 17.2.1 तत्कालीन परिदृश्य

 17.2.2 समकालीन इतिहासलेखन

 17.2.3 आधुनिक इतिहासलेखन

17.3 धर्म के प्रति अकबर का दृष्टिकोण

 17.3.1 प्रारंभिक चरण: 1560-1565

 17.3.2 द्वितीय चरण: 1566-1578

 17.3.3 तृतीय चरण: 1578-1580

 17.3.4 चतुर्थ चरण: 1581-1605

17.4 *सुलह-ए कुल*

17.5 मूल्याँकन

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.9 संदर्भ ग्रंथ

17.10 शैक्षणिक वीडियो

17.0 उद्देश्य

इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे:

- तत्कालीन लेखकों के धर्म संबंधी लेखनों के स्वरूप के बारे में,
- अकबर की धार्मिक नीतियों के बारे में कुछ इतिहासकारों के विचारों,
- धर्म के प्रति अकबर के दृष्टिकोण के बारे में,
- अकबर के धार्मिक विश्वास का उसके राज्य की नीति पर प्रभाव,
- रूढ़िवादी उलमा के साथ अकबर के संघर्ष,
- अकबर के द्वारा ***इबादत ख़ाना*** की स्थापना,
- *महज़र* की घोषणा, और
- अकबर की *सुलह-ए कुल* की नीति।

* डॉ. फिरदौस अनवर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-4: *भारत: 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य तक* खंड 7, इकाई 30 से अंशतः ली गई है।

17.1 प्रस्तावना

उत्तर भारत में तुर्की विजय के बाद उच्च शासकीय वर्ग के संघटन में एक आमूलकारी परिवर्तन हुआ। यह भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस समय से एक नये युग की शुरुआत मानी जा सकती है। इस नए युग के सूत्रपात का एक महत्वपूर्ण राजनैतिक कारण यह था कि इसके बाद से भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में मुसलमानों का उदय एक प्रभावकारी तत्व के रूप में हुआ। यह प्रक्रिया कई वर्षों तक जारी रही और मुगल शासनकाल तक कायम रही। इसका भारतीय इतिहास के काल विभाजन पर भी प्रभाव पड़ा। कुछ आधुनिक इतिहासकार मध्ययुग को 'मुस्लिम काल' की संज्ञा देने लगे। उनका यह सोचना है कि इस काल में मुसलमान शासक वर्ग के रूप में मौजूद थे अतः इस्लाम का राज्य धर्म के रूप में मान्य होना अनिवार्य था। परन्तु यह दृष्टिकोण भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि यह उच्च वर्ग के धर्म पर जरूरत से ज्यादा बल देता है और मध्यकालीन समाज के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक हितों को नजरअंदाज कर देता है। दूसरी बात यह है कि शासक के धर्म को राज्य का धर्म मान लेना तर्कसंगत नहीं है। इस प्रकार सोचने से राज्य और धर्म का मुद्दा उलझ जाता है।

इस इकाई में सबसे पहले हम उस पृष्ठभूमि का उल्लेख करेंगे जिसमें मुगल राज्य तंत्र सक्रिय था। हम समकालीन लेखकों की टिप्पणियों का भी उल्लेख करेंगे। धर्म के प्रति मुगल सम्राटों के दृष्टिकोण का भी परीक्षण किया जाएगा। इस इकाई में शासक की व्यक्तिगत आस्था, राज्य की नीतियों और गैर-मुसलमानों के साथ संबंधों की चर्चा की जाएगी। यहाँ हमने मुगल-राजपूत संबंधों के प्रश्न पर विचार नहीं किया है क्योंकि उस पर हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-112** में विस्तार से चर्चा की जाएगी। इस इकाई में हम धार्मिक पुनरुत्थानवादी (revivalist) तथा मुख्य धारा से इतर (deviant) अन्य धार्मिक परम्पराओं, जैसे *नुक्तवी*, ***महदवी***, *रोशनाई*, *मुज़द्दिदी*, *इशराकी*, जो सोलहवीं शताब्दी में हिंद-इस्लामी परम्परा में उदित हुईं, विशेषकर *हिजरा सहस्त्राब्दी* (AH 1000) के रुपान्तरण के साथ, पर चर्चा नहीं करेंगे। सोलहवीं शताब्दी में इन प्रवृत्तियों के अधिक गहन प्रभाव तथा निहितार्थों के मद्देनज़र इस पहलू पर विशिष्ट चर्चा हम अपने पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-112** में करेंगे।

हम यहाँ एक बात जोर देकर कहना चाहते हैं कि मध्यकालीन इतिहास, खासकर इस काल के धर्म, का मूल्याँकन करते समय आधुनिक शब्दावलियों का खूब सावधानी के साथ उपयोग किया जाना चाहिए। 'सम्प्रदायवाद', 'धर्मांधता', 'धार्मिक कट्टरता' जैसी शब्दावलियों का आज खुलकर उपयोग हो रहा है। कई बार इसके माध्यम से तथ्यों को तोड़-मरोड़ दिया जाता है। अतः इन मुद्दों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए हमें एक अनुशासित ऐतिहासिक दृष्टिकोण का मार्ग अपनाना होगा और मध्ययुग की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को सावधानी से परखना होगा।

17.2 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इस भाग में हम धर्म के प्रति राज्य और जनता के दृष्टिकोण पर विचार करेंगे। इसके साथ-साथ राज्य और धर्म के संबंध के नाजुक मुद्दे पर समकालीन और आधुनिक इतिहासवेत्ताओं का दृष्टिकोण जानने में भी मदद मिलेगी।

17.2.1 तत्कालीन परिदृश्य

इस काल में अधिकांश लोग धर्म के प्रति आस्थावान थे। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति से धार्मिक विषय का ज्ञाता होने की अपेक्षा की जाती थी। इसके परिणामस्वरूप इस काल में हिंदुओं या मुसलमानों द्वारा लिखे गए ऐतिहासिक लेखों, आदि पर धार्मिक विचारों की गहरी छाप है। इन पर अगर ज़रा भी विवेकहीन तरीके से विचार किया गया तो गलत निर्णय और भ्रामक निष्कर्ष सामने आएँगे।

दूसरे, जनजीवन में धर्म के महत्व को देखते हुए शासक अपने व्यक्तिगत और राजनैतिक हितों के लिए इसका खुलकर उपयोग करते थे। महमूद ग़ज़नी जैसे शासक अपने दुश्मनों के खिलाफ अक्सर *जेहाद* (धार्मिक युद्ध) का नारा दे दिया करते थे, जबकि वस्तुतः इनमें से किसी ने धर्म के लिए लड़ाई नहीं की। पी. सरन के अनुसार 'हमें ऐसा कोई भी उदारहण नहीं मिलता है जिसमें मुसलमान शासक ने शुद्ध रूप से धार्मिक आधार पर और धार्मिक उद्देश्य के लिए युद्ध किया हो।'

तीसरे, *उलमा* (मुस्लिम धर्मशास्त्री) का मनोबल काफी ऊँचा था। वे चाहते थे कि शासक अपने प्रशासन में इस्लामी संहिता का पालन करें और इसी के तहत गैर-मुसलमानों के साथ व्यवहार करें। परन्तु पी. सरन लिखते हैं, 'मुसलमान धर्मशास्त्रियों ने मुसलमानों को गैर-मुसलमानों, खासकर मूर्तिपूजकों के प्रति एक खास तरह का व्यवहार करने का निर्देश दिया था। यह ब्राह्मण धर्मशास्त्रियों के उस दर्शन से भिन्न नहीं था जिसमें धर्म की पवित्रता के नाम पर अपने देश के एक बड़े हिस्से को त्याज्य, और "अछूत" समझा गया था और उन पर कई तरह के जुल्म ढाए जाते थे।'

दूसरी तरफ प्रशासनिक मामलों में अक्सर भारत के मुसलमान शासक रुढ़िवादी *उलमा* के विचारों से सहमत नहीं थे। अधिकांश मामलों में वे अपनी नीतियों के अनुकूल न पड़ने वाले धार्मिक समुदायों के आदेशों को स्वीकार नहीं करते थे। उदाहरण के लिए, 14वीं शताब्दी का इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी विस्तार के साथ अलाउद्दीन खलजी के दृष्टिकोण का इस प्रकार उल्लेख करता हैः 'वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि राजनैतिक व्यवस्था और सरकार का अलग महत्व है और धार्मिक कानून (*शरीयत*) की अहमियत अलग है। शासकीय आदेश राजा के अधिकार क्षेत्र में आते हैं और न्याय निर्दिष्ट करने वाले आदेशों पर *काजियों* और *मुफ्तियों* का अधिकार होता है। उसके मतानुसार राज्य के मामलों में वह जनता के हित का ख्याल रखता है और अपने किसी कार्य को कानूनी और गैर-कानूनी तराज़ू पर नहीं तोलता है।' सुल्तान के *काजी* बयाना के मुग़ीसुद्दीन ने गैर-मुसलमान जनता के प्रति कठोर और अपमानजनक दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दी थी, परन्तु अलाउद्दीन ने उसकी सलाह अस्वीकृत कर दी और *काज़ी* को कहा कि उसके लिए सरकार और उसकी जनता का हित सर्वोपरि है। अतः उसने कट्टरपंथी विचारों को नजरअंदाज करते हुए आदेश जारी किए और नीतियाँ निर्धारित कीं। वस्तुतः धार्मिक कट्टरता और राजनैतिक मामलों के प्रति अलाउद्दीन के दृष्टिकोण ने नया मार्ग प्रशस्त कियाः मध्यकालीन शासकों ने धार्मिक कानूनों की अपेक्षा प्रशासनिक ज़रूरतों और राजनैतिक आवश्यकताओं को अधिक महत्व दिया। परंतु इसके साथ-साथ *उलमा* को खुश रखने की नीति भी अपनाई जाती रही। ये शासक इस समुदाय को संतुष्ट करने और राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रायः *उलमा* को वित्तीय और अन्य प्रकार की सहायता प्रदान किया करते थे।

एक बात यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मध्य युग में धर्म जीवन का अहम हिस्सा था अतः आमतौर पर शासकों ने अपनी नीतियों और कार्यों को धार्मिक शब्दावली में व्यक्त किया।

17.2.2 समकालीन इतिहासलेखन

मध्यकाल में शिक्षा की व्यवस्था के अनुरूप एक इतिहासकार *मदरसों* (मध्यकालीन शिक्षा केंद्र) में, धार्मिक माहौल में, प्रशिक्षण प्राप्त किया करता था। इसका उसके लेखन पर गहरा असर पड़ा। अपने संरक्षक की सेना के लिए वह *लश्कर-ए इस्लाम* (इस्लाम की सेना) और उसके दुश्मन की सेना के लिए *लश्कर-ए कुफ्र* (*काफिरों* की सेना) शब्दावली का इस्तेमाल किया करते थे। इसी प्रकार अपने स्वामी के सैनिकों की मौत को वह *शहादत* (शहीद) की संज्ञा देते थे, जबकि दूसरे पक्ष के सैनिकों को वह नर्क भेजने में ज़रा भी देर नहीं करते थे। भारत में शासक के धर्म की अपेक्षा शासितों के धर्मानुयायियों की संख्या ज़्यादा थी और इस स्थिति में ऐसी शब्दावली का उपयोग उलझन ही पैदा करता है। इन अभिव्यक्तियों को देखकर कोई भी असावधान व्याख्याता मध्यकालीन भारत के संघर्ष को मूलतः धार्मिक मान सकता है और वह यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि यह संघर्ष मूलतः इस्लाम और *कुफ्र* के बीच का संघर्ष था। लेकिन यह तथ्यों को विश्लेषित करने का सही ढंग नहीं होगा क्योंकि इन्हें किसी भी स्थिति में समकालीन राज्य की नीतियों के साथ उलझाना उचित नहीं है। वस्तुतः मूलतः यह एक प्रकार की शैली थी, लिखने का ढंग था, इस संबंध में कई प्रमाण भी उपलब्ध हैं। शाहजहाँ के शासनकाल के एक इतिहासकार मुहम्मद सालिह (*अमल-ए सालिह* के लेखक) ने कमालुद्दीन रोहिला के नेतृत्व में हुए अफगान विद्रोह को *दुश्मन-ए दीन* (धर्म का दुश्मन) की संज्ञा दी है। 1630 सी ई में जब ख्वाजा अबुल हसन (शाहजहाँ का एक कुलीन) ने नासिक अभियान की शुरुआत की तो अब्दुल हमीद लाहौरी (शाहजहाँ का दरबारी इतिहासकार) ने मुगल सेना के लिए *मुजाहिदान-ए दीन* (धर्म की रक्षा के सैनिक) शब्दावली का प्रयोग किया, जबकि वास्तविक स्थिति यह थी कि विपक्षी सेना में गैर-मुसलमानों की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या अधिक थी और मुगल सेना में भी गैर-मुसलमान सैनिक पर्याप्त मात्रा में शामिल थे। यह भी रोचक तथ्य है कि इन्हीं इतिहासकारों ने निज़ामशाही सेना के खिलाफ लड़ रहे मुगल सैनिकों को *मुजाहिदान-ए इस्लाम* (इस्लाम की रक्षा में

लड़ रहे सैनिक) कहा जबकि निज़ामशाही सेना में अधिकांश मुसलमान थे। गैर-मुसलमान सरदारों और कुलीनों के खिलाफ भी जब मुगल सेना भेजी जाती थी तो उनके लिए भी उसी शब्दावली का इस्तेमाल किया जाता था। जुझार सिंह बुंदेला के व्रिदोह को कुचलने के लिए गई सेना को *लश्कर-ए इस्लाम* कहा गया जबकि मुगल सेना में बड़ी संख्या में गैर-मुसलमान सैनिक मौजूद थे। शाहजहाँ के अधीन बल्ख और बदख्शां के खिलाफ भेजे गए अभियान में भी *मुजाहिद*, *शहादत*, आदि शब्दों का इस्तेमाल किया गया। ध्यान रहे इस बार मुगल शुद्ध रूप से अपने सहधर्मियों के साथ लड़ रहे थे। इससे पता चलता है कि इन शब्दों का धार्मिक महत्व कम और शैलीगत महत्व ज्यादा था। यह अभिव्यक्ति का एक ढंग था, एक शैली थी। अतः इस प्रकार के लेखन को पढ़ते समय विशिष्ट सावधानी बरतनी चाहिए।

17.2.3 आधुनिक इतिहासलेखन

'धर्म और राज्य' विषय पर शोध का प्रारंभ इलियट और डाउसन ने काफी पहले किया था। उन्होंने मध्यकालीन फारसी ग्रंथों के अंग्रेजी में अनुवाद की एक विस्तृत योजना प्रारंभ की थी। उन्होंने अक्सर ऐसे प्रसंग उठाए जिनका संबंध या तो शासक की (मूलतः मुसलमान) की 'धार्मिक कट्टरता' से था। अथवा उन्होंने उन उद्धरणों को लिया जिसमें मुट्ठीभर मुसलमान शासकों द्वारा स्थानीय भारतीय जनता (जो ज़्यादातर हिंदू थे, को दबाए जाने का उल्लेख किया गया था।)

वस्तुतः अंग्रेजों ने ऐसा एक सोची-समझी राजनैतिक नीति के तहत किया था। परंतु जदुनाथ सरकार, ए. एल. श्रीवास्तव, श्रीराम शर्मा, आदि भारतीय इतिहासकारों ने भी उनके ही दृष्टिकोण को अपना लिया।

एक बात गौर करने की है कि जब शासक और शासित अलग-अलग धर्म के होते थे तभी 'धार्मिक नीति' के तहत उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं की चर्चा की जाती थी। अगर अपने ही धर्मानुयायियों के प्रति शासक सही तथा गलत रुख अपनाता था तो उसे 'धार्मिक नीति' का अंग नहीं माना जाता था। इसी कारण औरंगजेब के 'हिंदू विरोधी' रवैये का तो खूब प्रचार किया गया परन्तु उसने अपने ही धर्म के विद्वानों, दार्शनिकों और संतों पर जो जुल्म ढाए, उसकी चर्चा कोई नहीं करता। याद रहे औरंगजेब के ही आदेश से सरमद, शाह मौहम्मद बदख्शी, मौहम्मद ताहिर और सैय्यद कुतबुद्दीन अहमदाबादी को फांसी की सजा दे दी गयी थी।

सीधे-सीधे शब्दों में कहा जाए तो धर्म शासक के हितों की पूर्ति का एक हथियार मात्र था। कभी शासक अपने स्थानीय सरदारों को धार्मिक रियायतें दिया करते थे तो कई बार शक्ति का उपयोग कर उन्हें कुचलते थे। उच्च और निम्न शासकीय समुदायों की क्रिया-प्रतिक्रिया को केवल धर्म के परिप्रेक्ष्य में देखना इतिहास के साथ अन्याय करना होगा। यह आर्थिक और राजनैतिक मुद्दों की भी अनदेखी होगी।

अंततः, इस विषय (राज्य और धर्म) के प्रति एक और दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है जो महत्वपूर्ण होते हुए भी इतिहासकारों का ध्यान अपनी ओर कम ही आकर्षित कर सका है। शासक की व्यक्तिगत आस्था, विश्वास, अहं और अपने समय की समस्याओं के प्रति उसके स्वयं के दृष्टिकोण और उसके द्वारा उन समस्याओं को हल करने के तरीके का भी विशेष महत्व है। इस दृष्टिकोण के तहत शासकों और उच्च पदस्थ लोगों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक परीक्षण किया जा सकता है। मुगल बादशाहों के कार्यों और आदेशों का मूल्याँकन करते समय इस दृष्टिकोण से काफी मदद मिलेगी।

बोध प्रश्न-1

1) राज्य की नीतियों के साथ धर्म को उलझाने में समकालीन लेखन किस हद तक उत्तरदायी है?

....

....

....

....

2) मुगल शासकों की 'धार्मिक नीति' संबंधी इलियट और डाउसन के दृष्टिकोण का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

17.3 धर्म के प्रति अकबर का दृष्टिकोण

अपने निजी विश्वास में अकबर निरंतर एक धर्मनिष्ठ मुस्लिम नज़र आता है। वह पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ता था। शेख़ फ़रीद भक्ख़री हमें यह बताता है कि वह मस्जिद को स्वयं अपने हाथों से साफ़ करता था और उसने सख़्ती से *शरीयत* के नियमों को लागू किया। पैग़म्बर के प्रति उसकी अपार श्रद्धा थी। जब अबू तुराब अपनी हज यात्रा से लौटा तो वह अपने साथ पैग़म्बर के कदमों की छाप के स्मारक-चिह्न लाया था, अकबर उनको लेने के लिए कई मील पैदल चलकर गया था। अकबर ने मक्का के लिए हज की यात्रा को प्रोत्साहित किया और इस हेतु वह धन भी उपलब्ध कराता था और इस उद्देश्य के लिए उसने एक पृथक *मीर-ए हज* को नियुक्त किया था। उसने हेजाज़ में हज यात्रियों के रुकने के लिए एक *ख़ानकाह* के निर्माण के लिए वित्तीय सहायता भी प्रदान की। 1575 में गुलबदन बेगम को *हरम* की कई अन्य शाही परिवार की महिलाओं के साथ हज पर जाने की अनुमति दी गई।

धर्म तथा धार्मिक समुदायों के प्रति अकबर के दृष्टिकोण को विद्वानों द्वारा सामान्यतः उसके द्वारा समय-समय पर दिए गए आदेशों और उठाए गए क़दमों के आधार पर कुछ चरणों में बाँटकर देखा जाता है। के. ए. निज़ामी अकबर के धार्मिक विचारों में संक्रमण को 'जन्म से प्राप्त धार्मिक विश्वास' से 'रूढ़िवादी कठोरता', उसके बाद 'जिज्ञासा और संशय', जो 'संश्लेषण और सर्वभौमिकता', और 'धर्मनिरपेक्षता' में रूपांतरित हुई तथा अंततः 'धार्मिक नेतृत्व' में तब्दील हो जाने के रूप में देखते हैं।

17.3.1 प्रारंभिक चरणः 1560-1565

1560-1565 के बीच अकबर ने जो कदम उठाए और इससे साम्राज्य की गैर-मुस्लिम जनता पर जो प्रभाव पड़ा उसी के आधार पर आमतौर पर धर्म और धार्मिक समुदायों के प्रति अकबर के दृष्टिकोणों का मूल्याँकन किया जाता है।

अपने प्रारम्भिक चरण में अकबर ने ग़ैर-मुस्लिमों के साथ अत्यधिक उदार रवैये के साथ शुरुआत की। आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि उसकी परवरिश और विभिन्न बौद्धिक प्रभावों ने उसकी व्यक्तिगत आस्था को दिशा दी तथा प्रभावित किया। अकबर के शिक्षक बैरम ख़ान तथा मीर अब्दुल लतीफ़ (ईरानी शिया), साथ ही मुनीम ख़ान (सुन्नी तूरानी) ये सभी धार्मिक पूर्वाग्रहों से ऊपर थे। इक़्तिदार आलम ख़ान (1992: 18) मंगोल *यासा-ए* चंग़ेज़ी के प्रभाव को भी श्रेय देते हैं जो वैचारिक रुप से शासकों को यह निर्देश देता था कि 'सभी सम्प्रदायों को एक समझें और उनके बीच भेदभाव न करें'। वह 1560 के दशक में महदवी तथा शियाओं के उत्पीड़न को भी मंगोल प्रभाव के कम होने के रूप में देखते हैं।

इस काल में सम्राट ने राजपूतों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए (1562 में अकबर ने बिहारी मल/भार मल की बेटी से विवाह किया); युद्ध बंदियों के इस्लाम धर्म में परिवर्तन करने पर रोक लगा दी (1562); तीर्थ कर हटा दिया (1563); और ***जज़िया*** कर (1564) समाप्त कर दिया। अकबर के इन सब कार्यों ने उसे एक 'धर्मनिरपेक्ष' व्यक्तित्व प्रदान किया। परन्तु अपने व्यक्तिगत जीवन में अकबर एक श्रद्धावान मुसलमान था।

अकबर के 'उदारवाद' की व्याख्या कई रूपों में की जाती है। यह कहा जाता है कि किसी विश्वसनीय मुस्लिम समर्थन के अभाव में अकबर के पास राजपूतों और भारतीय मुसलमानों के साथ संधि करने के अलावा और कोई चारा नहीं था। इन कार्यों के माध्यम से वस्तुतः गैर-मुसलमानों को कुछ रियायतें दी गईं और उनका सहयोग हासिल किया गया।

बहुत प्रारम्भ से ही अकबर का झुकाव सूफ़ियों के प्रति था। 1562 में ही अकबर अजमेर के साथ सम्पर्क में आया था। उसने अजमेर में शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती की दरग़ाह की बहुत सी यात्राएँ की; एक तो चित्तौड़ की विजय (1568) के तुरंत बाद और एक बार फिर सलीम के जन्म (1570) के बाद। उसने *दरग़ाह* के प्रबंध को दुरुस्त किया और इसकी व्यवस्था के लिए राज्य-निधि उपलब्ध कराई। गुजरात अभियान के दौरान उसके द्वारा '*या मुइन*' का नारा भी लगाया गया था (ख़्वाजा मुईनुद्दीन के आशीर्वाद की आशा से)। उसके कुछ सिपाही युद्ध के मैदान में इस अभियान के दौरान 'अजमेरी', 'अजमेरी' कहकर भी पुकार रहे थे। 1569 में इस सूफ़ी संत के प्रति आभार व्यक्त करने के प्रतीक के रूप में, जिसके आशीर्वाद से उसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थीं, उसने शेख़ सलीम चिश्ती के निवास स्थान को अपनी नई राजधानी फ़तेहपुर सीकरी के निर्माण स्थल के रूप में चुना। उसने अजोधन में बाबा फ़रीद गंज-ए शकर की *दरग़ाह* (1571) तथा फ़रीदुद्दीन याह्या मनेरी की *दरग़ाह* (1574) की भी यात्राएँ कीं। वह 1564 में निज़ामुद्दीन औलिया की *दरग़ाह* पर गया और बहराइच में सैय्यद सालार मसूद ग़ाज़ी की *दरग़ाह* पर तथा नारनौल के शेख़ निज़ामुद्दीन व ग्वालियर के सैय्यद मुहम्मद ग़ौस के प्रति भी सम्मान प्रकट करने के लिए दर्शन करने गया।

17.3.2 द्वितीय चरण: 1566-1578

हालांकि 1565 के बाद उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। *गुलज़ार-ए अबरार* तथा *नफाइस-उल मआसिर* जैसे ग्रंथों में इस बात का उल्लेख है कि अकबर के मन में *उलमा* के प्रति गहरा सम्मान था और उसने इस समुदाय को कई प्रकार की रियायतें भी दी थीं। इस काल में 'धर्म के मामले में उसके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव आया'। अकबर ने शेख़ अब्दुल क़ुद्दूस गंगोही के पोते को *सद्र-उस सुदूर* नियुक्त किया तथा वह स्वयं अब्दुन नबी के घर पर *हदीस* (पैग़म्बर से जुड़ी परम्पराएँ) पर व्याख्यान सुनने जाता था।

अकबर के *वकील* मुनीम खाँ ने एक दस्तावेज (अगस्त-सितम्बर 1566) पर हस्ताक्षर किए जिसमें आगरा के आसपास के इलाके में *जज़िया* कर वसूल करने का आदेश था। 1568 में अकबर ने चित्तौड़ में जारी किए गए प्रसिद्ध *फतहनामा* (*मुन्शात-ए नमकीन* में संग्रहित) में धार्मिक शब्दावलियों और प्रतीकों का जमकर उपयोग किया गया है और उसकी तुलना किसी भी अन्य पूर्वाग्रह युक्त और धार्मिक आदेश से की जा सकती है। इस पर धार्मिक शब्दावली की परत चढ़ी हुई थी और उसमें राजपूतों के खिलाफ लड़े गए युद्ध को *जेहाद* कहा गया, और वह इसमें मंदिरों को तोड़कर और *काफिरों* का मारकर अपने को गौरवान्वित महसूस करता है। *शरायफ़-ए* उस्मानी के अनुसार सम्राट ने बिलग्राम के *काज़ी* अब्दुस समद को वहाँ हिन्दुओं द्वारा की जाने वाली मूर्तिपूजा को रोकने का आदेश दिया था। बदायुनी के अनुसार और तो और 1575 में अकबर ने पुनः *जज़िया* कर लगा दिया था परन्तु यह कार्यान्वित नहीं हो सका।

बादशाह की शह पाकर उनमें से कुछ *उलमा* ने यहाँ तक कि मुसलमानों के गैर-सुन्नी सम्प्रदायों को दंडित करना शुरू कर दिया। महदवियों और शियाओं (जो रूढ़िवादी *उलमा* के मध्य अलोकप्रिय थे) पर ढाए गए ज़ुल्मों को इस काल के ऐतिहासिक लेखों में लगभग नज़रअंदाज कर दिया गया है। 1567 में अकबर ने शेख़ अब्दुन नबी की सलाह पर जाने-माने शिया विद्वान मीर मुर्तज़ा शरीफ़ी शीराज़ी के पार्थिव अवशेषों को अमीर खुसरो की क़ब्र के पास से खोद निकालने का आदेश दिया, इस बहाने से कि एक 'विधर्मी' को विख्यात सुन्नी संत के इतने पास नहीं दफ़नाया जा सकता है। 1569 में इस्फ़हान के मिर्ज़ा मुक़ीम तथा कश्मीर के मीर याक़ूब को अब्दुन नबी तथा अन्य *उलमा* के अनुमोदन पर शिया-सुन्नी मतभेदों के आधार पर मृत्युदंड दिया गया। अकबर ने अपने गुजरात अभियानों के दौरान (1572-1573) महदवियों से कठोर व्यवहार और उनका दमन किया। महदवी संत मियाँ मुस्तफ़ा बन्दगी को न केवल बंदी बनाया गया बल्कि उन्हें ज़ंजीरों में बांधकर अपमानजनक परिस्थितियों में दरबार में लाया गया।

इबादत खाना (धर्म स्थल) की स्थापना

अकबर ने 1575 में *इबादत खाना* की स्थापना इस्लाम धर्म सिद्धांत के विभिन्न मुद्दों पर मुक्त बहस करने के लिए की। प्रत्येक शुक्रवार को जुम्मे की नमाज़ के बाद धार्मिक चर्चा की बैठक शुरू हो जाती थी और देर रात तक चलती रहती थी। काज़ी जलालुद्दीन और *अन्य उलमा* से *कुरान* को पढ़ने तथा उसकी टीकाओं की व्याख्या करने के लिए कहा जाता था। अबुल फ़ज़ल उल्लेख करता है कि इसकी स्थापना 'सत्य का पता लगाने और यथार्थ की ख़ोज' के लिए की गई थी।

इसका एक रोचक तथ्य यह है कि धार्मिक असहिष्णुता के इस वातावरण में भी 1566-75 के बीच राजपूत राजा उसकी सेवा में शामिल होते रहे। अकबर के *मनसबदारों* में राजपूत तथा ग़ैर-मुस्लिमों का हिस्सा इस चरण में अधिकतम हो गया (देखें **तालिका 1**)।

तालिका 1

वर्ष	*उमरा* की कुल संख्या	तूरानी	ईरानी	भारतीय मुस्लिम	राजपूत तथा अन्य हिंदू	अनिर्दिष्ट
1555	51	27 (52.9%)	16 (31.37%)	—	—	8 (15.68%)
1565.75 (500 और उससे उच्च)	96	38 (39.58%)	37 (38.54%)	9 (9.37%)	8 (8.33%)	4 (14.16%)
1580	272	66 (24.26%)	47 (17.27%)	44 (16.17%)	43 (15.83%)	72 (26.47%)
1575.1595 (500 और उससे उच्च	184	64 (34.78%)	47 (25.54%)	34 (18.48%)	30 (18.30%)	9 (4.89%)

स्रोतः ख़ान, इक़्तिदार आलम, (1968) 'द नोबिलिटी अंडर अकबर एंड डेवलपमेंट ऑफ़ हिज़ रिलीजियस पॉलिसी', *जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड*, अप्रैल, नं. 1/2, पृ. 35

इस काल के दौरान उसने बीकानेर के राजा की भतीजी तथा जैसलमेर के रावल हर राय की बेटी से विवाह (1570) और डूंगरपुर के रावल असकरण की बेटी से तथा जोधपुर के राय मालदेव की बेटी (1576) से भी विवाह किया। अकबर ने वृंदावन के मदन मोहन मंदिर के पुजारी गोपालदास को 200 *बीघा* भूमि *मदद-ए माश* के रूप में प्रदान की। बाद में 1568 में राजा टोडरमल की अनुशंसा पर अकबर ने मदन मोहन तथा गोविंद देव मंदिरों का प्रबंधन जीव गोस्वामी को सौंपा। अतः मुगल सम्राट के लिए धर्म प्रमुख मुद्दा नहीं था। अकबर का मुख्य उद्देश्य स्थानीय राजाओं/सरदारों को नियंत्रण में रखना था। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धर्म का औजार के रूप में प्रयोग किया गया। जब अकबर को इसका पूरा फायदा नहीं मिला तो उसने यह नीति त्याग दी।

17.3.3 तृतीय चरणः 1578-1580

परन्तु इस्लाम धर्म के सिद्धांतों के मुद्दों पर मुस्लिम व्याख्यता, जिस प्रकार आपस में लड़ते रहते थे, इससे शीघ्र ही अकबर का मोह-भंग हो गया। *इबादत* ख़ाना की बैठकों के दौरान *उलमा* के व्यवहार पर अकबर ने अत्यंत निराशाजनक टिप्पणी करते हुए कहाः 'काश कि मुझे पारंपरिक विषयों के विद्वानों के बीच इस तरह के मतभेद सुनने को नहीं मिलते, और मेरे लिए *क़ुरान* की *आयतों* और रसूल के *हदीस* की अलग-अलग व्याख्याओं से हैरान रह जाने की नौबत न आती।' धीरे-धीरे, *सद्र* के पद निर्वहन करते हुए उसे हासिल असीमित शक्तियों के निरंकुश उपयोग के मामलों में और राजस्व मुक्त-अनुदानों के वितरण के मामलों में अब्दुन नबी का व्यवहार भी अकबर के लिए असहनीय तथा अहंकार-भरा हो गया। यहाँ तक कि एक बार शेख़ ने अकबर को केसरिया जैसे चमकीले रंग के वस्त्र पहनने के लिए न केवल टोका बल्कि गुस्से में आकर उसकी ओर छड़ी फेंककर हमला ही कर दिया। मथुरा में ईशनिंदा के आरोप में अब्दुन नबी द्वारा एक ब्राह्मण को मृत्युदंड देने के मामले ने इस मनमुटाव को और बढ़ा दिया। इस मुद्दे पर *उलमा* एक ओर खड़े थे तो *हरम* की शाही महिलाएँ और हिंदू अधिकारी दूसरी ओर। अकबर को इस दंड की कठोरता का अनुभव हुआ, और उसे लगा कि देश में इस कठोरता के साथ शासन नहीं किया जा सकता है। न केवल उसका इन *उलमा* के रवैये से मनमुटाव हुआ बल्कि उसे उनके पारम्परिक ज्ञान पर भी संदेह होने लगा।

यहाँ तक कि इन *उलमा* ने विशाल संपत्ति भी एकत्र कर रखी थी। अब्दुल्लाह सुल्तानपुरी, जो *शेख़-उल इस्लाम* था, ने बहुत सी संपत्ति इकट्ठा कर ली थी, जिसे बाद में, उसकी मृत्यु के बाद राजकीय ख़ज़ाने में ज़ब्त कर लिया गया।

धीरे-धीरे, अकबर का मन इन रूढ़िवादी *उलमा* के प्रति विद्रोही होने लगा, जो अपने 'दृष्टिकोण में जड़', 'आत्मकेंद्रित तथा अक्खड' थे तथा अक्सर 'तुच्छ विवादों' में संलग्न रहते थे।

आरंभ में केवल सुन्नियों को ही *इबादत खाना* में बहस में हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित किया गया था। परन्तु सितम्बर, 1578 से बादशाह ने सूफियों, शियाओं, ब्राह्मणों, जैनों, ईसाइयों, यहूदियों, पारसियों, आदि सभी धार्मिक समुदाय के विद्वानों के लिए *इबादत खाना* के द्वार खोल दिए। प्रेरित होकर अकबर ने धार्मिक उपासना तथा चर्च या मंदिरों के निर्माण की पूर्ण स्वतंत्रता का आदेश दिया। इस प्रकार, 'धार्मिक विषयों में किसी भी प्रकार के दबाव को निषिद्ध कर दिया गया।' *इबादत खाना* में होने वाले विवादों से अकबर को नई दिशा मिली और वह जान सका कि सभी धर्मों का मूल तत्व एक है। जो 'आत्म आस्था' और 'तर्क' पर आधारित है। तर्कवाद तथा तार्किकता पर अकबर के विचारों का मुख्य प्रेरणास्रोत फ़तउल्लाह शीराज़ी था। यह वही था जिसने अकबर का परिचय ईरानी तर्कवादी विचारकों मुहक़्क़िक दव्वानी, मीर सद्रउद्दीन, मीर ग़ियासुद्दीन मंसूर तथा मिर्ज़ा जान से करवाया था।

यही वह काल था जब अकबर शेख़ मुबारक तथा उसके पुत्रों, अबुल फ़ज़ल तथा फ़ैज़ी, तथा अन्य तर्कवादी विचारकों ग़ाज़ी ख़ान बदख़्शी, हाकिम अबुल फ़तह, इत्यादि के दार्शनिक प्रभाव में आया तथा उसका परिचय इब्न अल-अरबी के *वहदत-उल वुजूद* के दर्शन से कराया गया।

महज़र की घोषणा

1579 में *उलमा* के साथ अलगाव का अंतिम परिणाम *महज़र* की घोषणा थी। *महज़र* को शेख़ मुबारक द्वारा सावधानीपूर्वक तैयार किया गया था और अब्दुन नबी व मौलाना अब्दुल्लाह सुल्तानपुरी को उस समय के अन्य चार प्रमुख *उलमा* के साथ इस पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया गया था। इसके बाद अब्दुन नबी और मौलाना सुल्तानपुरी को हज पर जाने का आदेश दिया गया। *महज़र* के मुख्य प्रावधान यह घोषित करते थे किः

क) अकबर अपने युग का ख़लीफ़ा है;

ख) ख़लीफ़ा का दर्ज़ा ***मुज़तहिदों*** से ऊँचा है, अकबर इनमें से किसी के भी मत को चुन सकता है;

ग) अकबर स्वयं कोई ऐसा आदेश पारित कर सकता है जो ***नास्स*** के ख़िलाफ़ न हो। **(हसन 1943ः 125)**

अपने को *मुज़तहिद* और ***इमान-ए आदिल*** घोषित कर अकबर ने सभी धार्मिक मसलों पर *उलमा* के बीच के मतभेदों को निपटाने और मत व्यक्त करने का अधिकार प्राप्त करने का दावा किया। *सुल्तान-ए आदिल* को *मुज़तहिदों* से ऊपर रखा गया था। *महज़र* के माध्यम से अकबर ने आध्यात्मिक नेतृत्व को 'छीनने' का प्रयास किया था। अकबर ने *अमीर-उल मोमिनीन* का खिताब धारण किया और अकबर के नाम पर पढ़े जाने वाले *ख़ुतबे* में उसे ख़लीफ़ा कहकर संबोधित किया गया था। इस प्रकार यह ऑटोमन वंश से ख़िलाफ़त की शक्तियों को मुग़लों की ओर विस्थापित करने की इच्छा का संकेत करता है। एफ. डब्ल्यू. बकलर के मुताबिक़ अकबर ने ईरान के शाह के महत्व को नकारते हुए तथा ऑटोमन ख़लीफ़ा के प्रति निष्ठा के प्रदर्शन से बचते हुए मुस्लिम संसार में अपनी स्थिति को नियत करने का प्रयास किया। एम. रॉय चौधरी भी इसी मत को प्रतिध्वनित करते हैं जब वे यह स्वीकारते हैं कि *इमाम-ए आदिल* (अकबर) स्वयं को ईरान के *मुज़तहिदों* से ऊपर रखता है। आर. पी. त्रिपाठी भी इस ही तरह का मत प्रकट करते हैं कि *महज़र* 'रूम (ऑटोमन) के सुल्तान के मिथ्याभिमान को एक चुनौती' थी। वान नोअर *महज़र* की घोषणा को *उलमा* के लिए 'अंत्येष्टि भाषण' के रूप में देखते हैं। शेख़ ताजुल आरिफीन ने उसे *इंसान-ए कामिल* घोषित किया, तो फ़ैज़ी अकबर को *ख़ुदा-ए मजाज़ी* कहता है। नुरुल हसन (1943ः 133) का मानना है कि, 'इस दस्तावेज़ ने संप्रभु शासक को *उलमा* वर्ग की चालबाज़ियों से ऊपर उठा दिया (वह *उलमा* पर अत्यधिक संकीर्ण होने तथा आसानी से धनी और शक्तिशाली अधिकारियों के प्रभाव में आ जाने का आरोप लगाते हैं)'।

मुगल समाज के एक समुदाय ने इसका जमकर विरोध किया। अकबर के धार्मिक रवैये के विरुद्ध सबसे शक्तिशाली प्रतिक्रिया सरहिंद के नक्शबंदी सूफ़ी संत शेख़ अहमद सरहिंदी की ओर से आई। शेख़ अहमद सरहिंदी ने अपने समय के मुस्लिमों पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने स्वयं को पारंपरिक धार्मिक मूल्यों से दूर कर लिया है और इसके बजाय वे '*बिदत*' (नवाचारों; पैग़ंबर की परंपराओं से

भटकाव) में 'डूब' गए हैं। उन्होंने *इज़्तिहाद* (नई व्याख्याओं) पर प्रश्न चिह्न लगाया और इसे *इज़्तिहाद* के लिबास में विधर्म कहा है। उन्होंने अकबर के धार्मिक प्रयोगों को 'भटकाव-भरे' तथा 'भ्रामक अवधारणाएँ' कहकर आलोचना की है।

सबसे तीखी प्रतिक्रियाएँ *उलमा* की ओर से आईं। पहली बार इन विद्वानों ने धार्मिक माहौल को प्रतिकूल पाया और हेजाज़ की ओर प्रस्थान करने का निर्णय किया। मौलाना जलालुद्दीन ने *महज़र* पर दस्तख़त करने से इंकार कर दिया तथा हेजाज़ के लिए निकल पड़ा। ख्वाजा उबैदुल्लाह अहरार अकबर द्वारा *तौहीद-ए इलाही* की घोषणा करने पर हेजाज़ की ओर प्रस्थान कर गया। विरोध का प्रदर्शन करने के लिए अकबराबाद के हाजी इब्राहिम मुहद्दिस ने अकबर के सामने झुकने से (*सिजदा* करने से) इनकार कर दिया। लेकिन, अकबर की नीतियों के विरोध का एक मुख्य कारण उसके द्वारा धार्मिक विभाग की कार्यप्रणाली में पारदर्शिता लाने का प्रयास और *मदद-ए माश* के अनुदान में ग़बन पर नियंत्रण और उनकी संख्या में भारी कमी करने के कारण था। 1580-1581 के दौरान काबुल से बंगाल तक ऐसे प्रतिरोधों ने देश को अपनी गिरफ़्त में ले लिया था। हमीदा ख़ातून नक़वी ने अकबर के शासन में ऐसे विरोधों की कुल संख्या 144 होने की गणना की है। 1580 में जौनपुर के *काज़ी* मुल्ला मुहम्मद यज़्दी ने अकबर के खिलाफ़ *फ़तवा* जारी किया जिसने मुहम्मद मासूम काबुली, मुहम्मद मासूम ख़ान फरंखुदी, मीर मुइज-उल मुल्क, नैबत ख़ान तथा अरब बहादुर के विद्रोह को जन्म दिया। मासूम यद्यपि काबुल से संबंध रखता था, किंतु उसकी *मदद-ए माश* भूमि पटना में थी। उसने अकबर के सौतेले भाई मिर्ज़ा हाकिम को उसके सिंहासन पर बैठाने का प्रयास भी किया। इस प्रकार *उलमा* के विद्रोहों ने इतना व्यापक रूप ले लिया था कि स्वयं अकबर के ताज के लिए ख़तरा पेश हो गया। लेकिन अंततः अकबर इन कट्टरपंथियों के विद्रोहों को 1584 तक पूर्णतः दबाने में सफल रहा। लेकिन, आर. पी. त्रिपाठी (1973: 132) का मानना है कि, '*महज़र* का क्षेत्र सीमित था। इसने केवल बादशाह को विभिन्न कानूनविदों के भिन्न-भिन्न मतों के बीच से चुनने के अधिकार पर बल दिया था, जो उसे राज्य तथा प्रजा के हित में सर्वोत्तम प्रतीत हों; और वह ऐसे आदेशों को जारी कर सके जो *नास* के विरुद्ध न हों और लोगों की भलाई के लिए हों।'

अकबर ने एकाएक स्वयं को ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरग़ाह पर समय-समय पर जाने से भी दूर कर लिया और 1580 में उसने अपने बदले मुराद को वहाँ भेजा।

1579 में अकबर ने अंतिम रूप से *जज़िया* को वापस ले लिया। *जज़िया* का उन्मूलन हिंदू तथा मुस्लिम प्रजा के बीच सभी भेदों को समाप्त करने की उसकी मंशा को प्रकट करता था। *शरीयत* के सिद्धांत अब हिंदू जनता पर नहीं थोपे जाने थे।

यही वह काल था जब अकबर ने विभिन्न धार्मिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं से संवाद किया और उनके प्रभाव में आया, विशेषकर, जैन तथा हिंदू विद्वानों और जेसुइटों के साथ। रूढ़िवादी विद्वानों ने उस पर *शरीयत* के सिद्धांतों से दूर जाने और शिया और हिन्दुओं का पक्ष लेने का आरोप लगाया।

अकबर तथा हिंदू और जैन

अकबर ने भारतीय दार्शनिक परम्परा के कई विद्वानों से संवाद किया: मधु सरस्वती, मधुसूदन, दामोदर भट्ट, आदि। बदायूनी हमें यह जानकारी देता है कि देबी तथा पुरुषोत्तम ने उसे पारंपरिक हिंदू पौराणिक-ग्रंथों की शिक्षा दी। 1576-1577 में अकबर ने मथुरा से विट्ठलेश्वर को आमंत्रित किया और गोकुल का अनुदान उसे दिया; 1593 में एक *फ़रमान* जारी कर मथुरा, मंगोटा तथा ओद के *परगनों* में मोरों की हत्या तथा शिकार को प्रतिबंधित कर दिया। अकबर *जोगियों* से भी कई बार चर्चा और संवाद करता था और फ़तेहपुर सीकरी के ठीक बाहर उसने *जोगीपुरा* नाम से अलग बस्ती बसायी थी। वह स्वयं रोहतास में बालनाथ के मठ पर गया था। दरबार में नियमित रूप से हिंदू त्योहारों को मनाया जाता था। अपनी माँ हमीदा बानो बेगम की मौत के बाद उसने अपनी मूछें तथा सिर भी मुंडवा लिया था, जो शोक प्रकट करने का एक हिंदू तरीक़ा है। सम्मान प्रकट करने के लिए उसने अपने साम्राज्य में गायों की हत्या पर रोक लगा दी थी। अकबर ने शहज़ादा खुर्रम को भारतीय दर्शन की शिक्षा देने के लिए सूर दास ब्राह्मण की भी नियुक्ति की थी।

इबादत ख़ाना के दरवाज़ों को विभिन्न पंथों और धर्मों के विद्वानों के लिए खोलने से जैनों के साथ आगे संवाद करने के लिए एक अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार हुई। सत्य की अपनी तलाश में अकबर ने जैन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

विद्वान हीरविजय सूरी, जैन तप गच्छ शाखा के प्रमुख, को आमंत्रित किया, जो 1583 में अन्य सड़सठ जैन विद्वानों के साथ आगरा में अकबर के दरबार में पहुंचे थे और 1585 तक वहाँ रहे। अकबर ने उन्हें *जगत गुरु* की उपाधि से विभूषित किया था। जैन प्रभाव में अकबर ने जैन पर्यूषण पर्व पर बारह दिन के लिए जीव हत्या पर प्रतिबंध लगाया। अबुल फ़ज़ल *आईन-ए अकबरी* (*आईन* 30) में हीरविजय सूरी तथा उनके शिष्यों भानुचंद्र तथा विजयसेन सूरी को उत्तम कोटि का विद्वान बताता है। जैन विद्वान भानुचंद ने सूर्य के सौ नामों की व्याख्या करने वाला एक भाष्य लिखा था (विस्तार के लिए देखें **इकाई 2**)। जैन विद्वान शांतिचंद्र इस भाष्य का अन्य लेखक था और उसने संस्कृत काव्य *कृपारसकोष* की भी रचना की थी। भानुचंद्र ने शत्रुंजय (पवित्र जैन तीर्थ) पर्वत पर तप गच्छों के नियंत्रण को सुनिश्चित करने में अकबर की अनुकम्पा भी प्राप्त की। भानुचंद्र की प्रार्थना पर अकबर सौराष्ट्र के विद्रोही बंदियों को आज़ाद करने हेतु सहमत हो गया था। अकबर ने लाहौर के किले के पास जैन मंदिर के निर्माण हेतु भूमि का दान भी किया। अकबर ने 1590 तथा 1592 में जैनों के पक्ष में दो *फ़रमान* जारी किएः 1590 का *फ़रमान* खंभात में जैनों के उत्पीड़न के खिलाफ़ जारी किया गया था और 1592 का श्वेतांबर तप गच्छ शाखा के पक्ष में श्वेतांबर जैनों की तीर्थयात्रा का नियंत्रण तप गच्छ के हाथों में सौंपते हुए जारी हुआ था। अकबर ने विरोधी खर्तार गच्छ के प्रमुख जिनचंद्र सूरी को भी 1592 में लाहौर के दरबार में आमंत्रित किया, उन्हें उनके इकतीस शिष्यों के साथ, जिनमें जयसोम तथा कनकसोम भी शामिल थे। अकबर ने 1593 में जिनचंद्र सूरी को *युग प्रधान* की उपाधि से भी नवाज़ा। जिनविजय पर कृपा करते हुए अकबर ने गुजरात के जैन तीर्थ केंद्रों की सुरक्षा हेतु एक *फ़रमान* भी जारी किया। अकबर ने जिनविजय को यह *फ़रमान* भी दिया कि संपूर्ण राज्य में आषाढ़ मास में नौवीं से पंद्रहवीं तिथि (नवमी से पूर्णिमा तक) तक जीव हत्या पर प्रतिबंध रहेगा। हीरविजय सूरी का शिष्य विजयसेन अकबर के दरबार में 1593 में लाहौर दरबार पहुँचा तथा अकबर ने उसे *कालीसरस्वती* की उपाधि प्रदान की। विजयसेन ने विद्वता के साथ ब्राह्मणों द्वारा जैनों पर ईश्वर पर अविश्वास के लगाए गए आरोपों का खण्डन किया। विजयसेन के शिष्य नंदीविजय को भी *खुशफहम* की उपाधि से नवाज़ा गया था। विजयसूरी ने अकबर को साल के कुछ महीनों में सिंधु नदी में मछली पकड़ने को निषिद्ध करने हेतु भी प्रेरित किया। स्पष्ट रूप से, जैनों के साथ अकबर की परस्पर भेंट, धर्म तथा धार्मिक समुदायों के प्रति अकबर के बहुलतावादी दृष्टिकोण को दर्शाती है।

अकबर तथा जेसुइट

अकबर ने जेसुइटों को *इबादत ख़ाना* की चर्चा में भाग लेने के लिए बुलाया और गर्मजोशी के साथ उनका स्वागत किया। तीन जेसुइट मिशन अकबर के दरबार में पहुँचेः पहला, फ़ादर मॉन्सरेट और फ्रांसिस हेनरीक के साथ रुडोल्फ एक्वाविवा के नेतृत्व में (1580-1583); दूसरा मिशन, एडवर्ड लियोटन तथा क्रिस्टोफ़र डि वेगा के नेतृत्व में (1591-1592); तथा तीसरा मिशन फादर जिरोम ज़ेवियर के नेतृत्व में फ़ादर इमैनुअल पिन्हेरो तथा ब्रदर बेनेडिक्ट डे गोज़ के साथ (1595-1617)। अकबर *उलमा* के लालच के विपरीत जेसुइट पादरियों के सादगी-भरे जीवन और विचारों की एकता को देखकर काफ़ी प्रभावित हुआ था। उसने ईसाई उपदेशों में भी गहरी रुचि दिखाई। फ़ादर मॉन्सरेट को मुराद का शिक्षक नियुक्त किया गया। फादर मॉन्सरेट बादशाह की कश्मीर यात्रा में भी उसके साथ था। अकबर के काल में जीसस की जीवनी *मिरात-उल कुद्दुस* को भी फारसी में संकलित किया गया। ईसाइयों को फ़तेहपुर सीकरी तथा लाहौर में गिरिजाघर और विद्यालय खोलने की अनुमति प्रदान की गई। लाहौर में ईसाई विद्यालय में *उमरा* तथा अन्य कुलीनों के लड़के पढ़ने जाते थे, जिसमें बदख़्शां के सरदार के पुत्र भी शामिल थे। अकबर स्वयं आगरा में गिरिजाघर के उद्घाटन में उपस्थित रहा था और बताया जाता है कि उसने ईसाई पद्धति से प्रार्थना भी की थी (विस्तार के लिए देखें **इकाई 2**)। अकबर के पास जेसुइट पादरियों द्वारा उसे सौंपा गया येशु और वर्जिन मैरी का चित्र भी था। जेसुइट पादरियों की यह उत्कंठ इच्छा थी कि अकबर ईसाई धर्म में धर्मांतरित हो जाए। अकबर की ईसाई धर्म में रुचि, यद्यपि काफी गहरी थी, किंतु यह मुख्यतः ईसाई धर्म के सिद्धांतों को जानने तथा 'परम-सत्य' की ख़ोज तक ही सीमित थी।

अकबर ने *जोगियों, सन्यासियों* और *कलंदरो* के साथ भी संवाद किया। उनमें से काफी संख्या में लोगों ने उसके नवीन मत का अनुकरण भी किया।

बोध प्रश्न-2

1) 1565 तक धर्म और धार्मिक समुदायों के प्रति अकबर के दृष्टिकोण का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

2) *इबादत खाना* के बारे में 50 शब्दों में लिखिए।

....

....

....

3) *उलमा* से अकबर के विमुख हो जाने की प्रक्रिया की चर्चा कीजिए।

....

....

....

4) *महज़र* तथा उसके महत्व की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

17.3.4 चतुर्थ चरणः 1581-1605

अंतिम चरण कई राजाज्ञाओं में परिलक्षित होता है। 1582 में *तौहीद-ए इलाही* की घोषणा के साथ ही उसने अंततः *इबादत ख़ाना* की चर्चाओं को समाप्त कर दिया था। 1584 में अकबर हिजरी संवत को त्यागकर इलाही संवत (जिसे बाद में शाहजहाँ द्वारा त्याग दिया गया था) की शुरुआत करता है। 1592 में वह सहस्राब्दिक सिक्के जारी करता है। इस प्रकार, जैसा कि के. ए. निज़ामी (2009: 132) कहते है, 'वैचारिक और संरचनात्मक दोनों रूप से इस्लाम की केंद्रीय परम्पराओं से दूर हटने की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी।' सहस्राब्दी का उत्सव मनाने का अकबर का प्रयास भी उतना ही महत्वपूर्ण है जहाँ उसने 'व्यवहारिक' और 'आदर्श' के बीच का अंतराल पाटते हुए विचारों की एकता को स्थापित करने का प्रयास किया। इस संदर्भ में स्वयं के लिए *मुजद्दिद-ए अल्फ-ए सानी* (दूसरी सहस्राब्दी के आरम्भ का सुधारक) की उपाधि का प्रयोग काफ़ी महत्वपूर्ण हो जाता है और इस तरह उसने स्वयं को 'प्रतिश्रुत मसीहा' (promised messiah) के रूप में पेश करने का प्रयास किया।

बदायूनी और जेसुइट यह दावा करते हैं कि 1581 के बाद वह मुस्लिम भी नहीं रह गया था। शेख़ अहमद सरहिंदी ने तो यह भी कहा कि ग़ैर-मुस्लिमों के प्रति अकबर की सहिष्णुता मुख्यतः इस्लाम के प्रति उसकी घृणा के कारण थी।

तौहीद-ए इलाही

अकबर का *तौहीद-ए इलाही* (इसे प्रायः गलत शब्दावली में *दीन-ए इलाही* कहा जाता है) उसके शासनकाल की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना थी।

> इस नए धर्म में दीक्षा के लिए रविवार का दिन नियत था ... नवदीक्षित अपने हाथों में पगड़ी लेकर बादशाह की ओर बढ़ता था और बादशाह के चरणों में अपना शीश रख देता था, जो उसे उठाते हुए उसके सिर पर वापस पगड़ी रख देता था। दीक्षा के प्रतीक रूप में नए अनुयायी को *शस्त* (*shast*) प्रदान किया जाता था।
>
> इसके अनुयायियों को परस्पर *अल्लाह-ओ-अकबर* और *जल्ला-जल्लालहू* के शब्दों से अभिवादन करना होता था।
>
> (नवदीक्षित) को संपत्ति, जीवन, मज़हब और सम्मान का समर्पण इस विश्वास के संस्थापक को करना पड़ता था।

इस विश्वास के नवदीक्षितों में शामिल थेः .... सन्यासी, जोगी, क़लंदर, हकीम तथा सूफ़ी तथा सिपाही, व्यापारी-गण, शिल्पकार तथा खेतिहर जैसे दुनियावी कार्यों में रत हज़ारों अन्य अनुयायी ...

(नवदीक्षित) *मुरीद* नहीं थे बल्कि *चेले* थे और अकबर *पीर* नहीं बल्कि एक पैग़म्बर था।
(निज़ामी 2009: 133, 135, 146-147)

केवल कुछ ही दरबारियों ने इस नए मत को स्वीकारा था। इसमें से प्रमुख थे, शेख़, मुबारक तथा उनके दो पुत्र अबुल फ़ज़ल तथा फ़ैज़ी और बीरबल। उसके प्रमुख अधिकारियों राजा भगवान दास, राजा मान सिंह और टोडरमल ने इस नए मत से जुड़ने से इंकार कर दिया था।

आर. पी. त्रिपाठी (*राइज एंड फॉल ऑफ द मुगल एम्पायर, इलाहाबाद*, 1956, पृष्ठ, 285-90) ने इस विषय का विस्तार से परीक्षण किया है। उनके कथन को यहाँ विस्तार से रखना प्रासंगिक होगाः 'अकबर जैसे बुद्धिमान शासक ने यह भली-भाँति समझ लिया होगा कि, न तो सभी धर्मों को एक में मिलाना संभव था और न ही मौजूद धर्मों से अलग एक और नया धर्म स्थापित करना संभव था। परन्तु उसने उसे सुनने वालों तक अपनी बात पहुँचाने की आवश्यकता महसूस की। इस पंथ का कोई धार्मिक ग्रंथ नहीं था, किसी पुजारी की व्यवस्था नहीं थी, उपासना का कोई पवित्र स्थल नहीं था दीक्षा के अलावा कोई अनुष्ठान या समारोह नहीं था ... प्रत्येक सदस्य को वचन पत्र लिखना होता था, जैसे सम्पत्ति, जीवन, सम्मान और धर्म का त्याग ... (यह) एक धर्म नहीं था और अकबर ने कोई ''चर्च'' स्थापित करने की कोशिश नहीं की .... अनुयायियों को शामिल करने के लिए शक्ति और धन का सहारा नहीं लिया गया .... यह पूर्णतः एक व्यक्तिगत मुद्दा था। यह सम्राट और उसकी जनता के बीच का मामला नहीं था बल्कि अकबर और उसे *पीर* या गुरु मानने वालों के बीच का मामला था।' त्रिपाठी (1956: 288) उचित ही तर्क देते हैं कि '*दीन-ए इलाही* कोई धर्म नहीं था और अकबर का कोई चर्च स्थापित करने का कोई इरादा नहीं था।' वह 'आध्यात्मिक मार्गनिर्देशन तथा उनमें (लोगों में) स्वयं की उदार भावनाओं को अंतर्विष्ट कराने' से आगे नहीं गया (त्रिपाठी 1956: 289)।

वान नोआर इसे अकबर द्वारा अपनी राजनीतिक बंधुता को सदृढ़ बनाने के प्रयास के अतिरिक्त और कुछ ज्यादा नहीं मानता। वह टिप्पणी करता है, '*दीन-ए इलाही* की विशेष व्यवहारिक महत्ता थी; यह एक राजनीतिक बिरादरी थी जिसके सदस्य अच्छे तथा बुरे वक़्त में और आनंद तथा संकट में बादशाह के साथ खड़े रहने की प्रतिज्ञा से बंधे हुए थे।'

ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर अपने चारों ओर एक निष्ठावान वर्ग खड़ा करना चाहता था जिन्हें वह आध्यात्मिक दिशा प्रदान कर सके। अतः *तौहीद-ए इलाही* का अकबर की धार्मिक या राजनीतिक नीति से कुछ भी लेना-देना नहीं था।

17.4 *सुलह-ए कुल*

अकबर की *सुलह-ए कुल* (सभी के साथ शांति; सार्वभौमिक शांति)के तत्वों को अन्य धार्मिक परम्पराओं के अध्ययन की उसकी व्यग्रता में देखा जा सकता है। के. ए. निज़ामी तर्क देते हैं कि *सुलह-ए कुल* के माध्यम से अकबर ने अपने 'धार्मिक विचार के सामाजिक आयाम' पर बल देने का प्रयास किया। अकबर के लिए धार्मिक सद् इच्छा तथा सहिष्णुता सबसे महत्वपूर्ण थी। अबुल फ़ज़ल तर्क देता है, 'राजाओं में दैवीय उपासना उनके न्याय तथा अच्छे प्रशासन में अभिव्यक्त होती है' (स्त्रूसैंड 1999: 137)। 'उसके लिए धर्म एकता में बांधने की युक्ति थी न कि तनाव पैदा करने का साधन' (निज़ामी 2009: 224)। अकबर के लिए 'धार्मिक तनाव मानव के दुर्भाग्य का आधारभूत कारण थी और वह *सुलह-ए कुल* को मौलिक अच्छाई के रूप में पेश करता है' (स्त्रूसैंड 1999: 137)।

के. ए. निज़ामी 1569-1585 के बीच के काल को, जब वह फ़तेहपुर सीकरी में निवास कर रहा था, और अपनी नई राजधानी के निर्माण में व्यस्त था, अकबर द्वारा, पत्थर (राजधानी का निर्माण), तूलिका (चित्रकारी) तथा क़लम (*मकतब ख़ाना* में शुरू किए गए संस्कृत कृतियों के व्यापक अनुवाद) की सहायता से विविधता में एकता को खोजने के काल के रूप में देखते हैं। 'उसके अधीन राज्य भारतीय संस्कृति की समस्त परंपराओं के समुच्चय को प्रतिबिंबित करने लगा था' (निजामी 2009: 182)। जहाँगीर उल्लेख करता है, 'उसके पिता के साम्राज्य में शिया और सुन्नी एक ही मस्जिद में नमाज़ पढ़ते थे'।

अबुल फ़ज़्ल यह भी तर्क देता है कि अकबर *सुलह-ए कुल* से *मुहब्बत-ए कुल* की ओर बढ़ रहा था। धार्मिक वर्गों के प्रति अकबर के रवैये की निशानी उसका गहन मानववाद और दृष्टिकोण की उदारता थी। अकबर के *सुलह-ए कुल* का सुजान राय भंडारी ने खूबसूरत ढंग से सार प्रस्तुत किया हैः

> मुस्लिम, हिंदू, पारसी, ईसाई तथा अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपने धर्म तथा कानून के अनुसार ईश्वर की आराधना करनी चाहिए।

17.5 मूल्यॉंकन

जहाँगीर धर्म तथा धार्मिक समूहों के प्रति अपने पिता की अभिवृत्ति को बखूबी वर्णित करता हैः 'मेरे पिता हमेशा प्रत्येक धर्म तथा पंथ के विद्वानों की संगत किया करते थे... उन्होंने प्रत्येक नस्ल और पंथ और धारणा की अच्छाइयों से स्वयं को जोड़ा, और उनकी परिस्थिति और समझ के अनुसार सभी के प्रति उदारता प्रकट करते थे।' धर्म के प्रति अकबर की नीति को एक समकालीन कवि ने भी बहुत खूबसूरती से अभिव्यक्त किया हैः 'आला हज़रत (अकबर) के न्याय से मज़हब ने ऐसी भव्यता पाई है कि एक हिंदू (मान सिंह का संदर्भ) इस्लाम की तलवार हाथ में थामे है।' निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए, आमतौर पर अकबर ने धार्मिक भेदभाव की नीति नहीं अपनाई। परंतु अकबर ने धर्म और जाति को भूलकर उन सबके खिलाफ कड़े कदम उठाए जिन्होंने उसे चुनौती देने की कोशिश की या अपने सामाजिक या वैचारिक मूल्यों की सीमा का अतिक्रमण किया। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि किसी भी धार्मिक समुदाय के खिलाफ कड़ा रुख नहीं अपनाया गया बल्कि व्यक्ति विशेष को दंडित किया गया।

दूसरी तरफ एक मत यह भी है कि अकबर ने इस्लाम को त्याग दिया था, उसका रवैया रूढ़िवादी इस्लाम की ओर दमनात्मक था, तथा उसका उदारवादी दृष्टिकोण आडंबरपूर्ण था। निमतुल्लाह हरावी अकबर के काल में प्रचलित धार्मिक परिवेश के प्रति आलोचनात्मक रवैया रखता है। शेख़ फ़रीद बुख़ारी, जिसने शेख़ मुबारक की मृत्यु का तिथि-लेख *शेख़ मुल्हिद* (विधर्मी शेख़) के रूप में लिखा था, अकबर की नीतियों के प्रति इस प्रतिरोध को प्रतिध्वनित करता है। बदायूनी अकबर पर 'सलीब को स्वीकारने' तथा इस्लाम को त्यागने का आरोप लगाता है। लेकिन यह भी सत्य है कि ईसाई मिशनरियों को उससे मिलने की अनुमति भी नहीं दी गई थी, जब वह मृत्यु शय्या पर था।

सुजान राय भंडारी, इसके विपरीत, मूल्यॉंकन करता है, 'कुछ मुस्लिमों ने, जो धर्मांधता से मुक्त न थे, *ख़ाक़ान-ए आज़म* पर धर्म से विचलित होने का आरोप लगाया और उनके अपमान में लगे रहते थे'। 1592 में हम राजा मान सिंह द्वारा राजमहल में एक विशाल मस्जिद के निर्माण के विषय में सुनते हैं। यद्यपि यह प्रतीत होता है कि रूढ़िवादी इस्लामी संस्थानों तथा व्यक्तियों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता में निश्चित कमी आई थी तथा अपने कुछ आदेशों में अकबर ने नमाज़ पर रोक तथा मस्जिदों को बंद करने का निर्देश दिया था। अकबर का *सुलह-ए कुल* का सिद्धांत उसे इस्लाम के अनुष्ठानों में सार्वजनिक रूप से भागीदारी करने से अलग करता था। 1595-1601 के बीच अकबर के कृत्य उसके इस तरह की सार्वजनिक भागीदारी से विमुख रहने का संकेत देते हैं। इस्लामी अनुष्ठानों में सार्वजनिक रूप से भागीदारी से इस विमुखता को रूढ़िवादी *उलमा* द्वारा अकबर के इस्लाम को त्याग देने के रूप में देखा गया। लेकिन यह, जैसा कि इक़्तिदार आलम ख़ान तर्क देते हैं, यह एक संक्षिप्त चरण था (1595-1601), और यह आरोप कि अकबर ने इस्लाम को त्याग दिया था सत्य से काफ़ी दूर नज़र आता है। उसके शासनकाल के अंतिम चार वर्षों में रूढ़िवादी सुन्नी वर्ग में कोई व्यापक असंतोष नज़र नहीं आता है और 'उसके सभी नवाचारों के बावजूद' वह अपने 'अंत तक एक मुस्लिम ही' था (ख़ान 1992: 28)। आर. पी. त्रिपाठी (1956: 284) यह भी तर्क देते हैं कि, 'अकबर एक मुस्लिम के रूप में जिया और मरा ... उसने स्वयं को कभी किसी विशेष क़ानून के मत से नहीं जोड़ा और यही मुख्य कारण था कि लोग उसके धर्म पर संदेह करते थे।'

बोध प्रश्न-3

1) अकबर के *तौहीद-ए इलाही* की मुख्य विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

2) *सुलह-ए कुल* की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

17.6 सारांश

इस इकाई में हमने प्रमुख धार्मिक समुदायों के प्रति अकबर की नीतियों पर विचार-विमर्श किया है। चूंकि मुगल शासकों पर कोई संवैधानिक प्रतिबध नहीं लगा हुआ था, इसलिए वे निरंकुश थे और किसी के प्रति वे उत्तरदायी भी नहीं थे। अतः उनके कार्य और नीतियाँ एक प्रकार से राज्य को ही नीतियाँ बन जाती थीं। मुगल राज्य की अपनी कोई धार्मिक नीति नहीं थी। यह नीति मुगल सम्राट की सोच और व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर निर्भर थी। बाबर और हुमायूँ के पास इस संदर्भ में कोई निश्चित नीति प्रतिपादित करने का समय ही नहीं था। अकबर ने हालांकि स्वयं को सार्वभौमिक शासक के रूप में अपने को पेश करने का प्रयास किया और सार्वभौमिक शांति का विचार प्रस्तुत किया। वह बहुत हद तक उदार तथा सहिष्णु था और *उलमा* की रूढ़िवादिता को उसने पूरी तरह ख़ारिज कर दिया था। उसकी धार्मिक विश्व दृष्टि के केंद्र में *सुलह-ए कुल* था।

17.7 शब्दावली

इबादत खाना : अकबर ने 1575 में *इबादत खाना* की स्थापना की। यह मुस्लिम (सुन्नी) धर्म शास्त्रियों के साथ धार्मिक बहस करने के उद्देश्य से की थी। बाद में इसके दरवाजे सभी धर्मावलंबियों के लिए खोल दिए गए

इमाम-ए आदिल : न्यायसंगत शासक

जज़िया : एक प्रकार का धार्मिक कर जिसे मुस्लिम राज्य में रहने वाली गै़र-मुस्लिम जनता से वसूला जाता था

महदवी : सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी द्वारा पन्द्रहवीं शताब्दी के आख़िर में प्रारम्भ किया गया एक इस्लामी आंदोलन, उन्होंने 1496 में स्वयं को *महदी* घोषित किया था

मुअज़्ज़िन : वह व्यक्ति जो मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए अज़ान देता है

मुज़्तहिद : 'अपरिहार्य' सत्ता

नास : *कुरान* तथा *हदीस* के कथन

शरीयत : इस्लामी क़ानून

उलमा : *आलिम* का *बहुवचन;* मुस्लिम धर्मवेत्ता

वकील : प्रधान मंत्री

17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) स्पष्ट कीजिए कि अभिव्यक्ति की इस शैली के कारण आधुनिक इतिहासकार उलझन में पड़ गए और जिन्होंने उनके ग्रंथों के अर्थों को ठीक ढंग से विश्लेषित करने की कोशिश नहीं की। वे सही निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाए। किसी भी युद्ध को *जेहाद* और दुश्मन को *कुफ्र,* आदि की संज्ञा देना आम बात थी। इसी तथ्य पर विस्तार से चर्चा कीजिए। देखिए उप-भाग 17.2.1 17.2.2

2) विश्लेषण करके यह बताइए कि किस प्रकार इलियट और डाउसन ने मुगल इतिहास के दस्तावेज़ों के उन्हीं अंशों का अनुवाद किया है जिससे मुगल शासक वर्ग को शोषक और धर्मांध

के रूप में दिर्शाया जा सके या फिर मुसलमानों (मुगल शासकों) को हिंदुओं (जनता) पर अत्याचार करते हुए दिखाया जा सके। देखिए उप-भाग 17.2.3

बोध प्रश्न-2

1) इस तथ्य पर विचार कीजिए कि 1556-1568 के बीच विभिन्न समुदायों को धार्मिक रियायत दिए जाने के पीछे राजनैतिक उद्देश्य काम कर रहा था। तूरानी कुलीनों की बगावत का सामना करने के लिए अकबर को भारतीय मुसलमानों और राजपूतों पर निर्भर रहना पड़ता था। परन्तु जब भी उसे ज़रूरत महसूस हुई उसने उसके खिलाफ कड़े कदम उठाने में ज़रा भी संकोच नहीं किया और राजनैतिक ज़रूरत के अनुसार इसे धार्मिक स्वर भी प्रदान किया (बिल्कुल वैसा ही जैसा 1568 सी ई में किया था)। देखिए उप-भाग 17.3.1

2) *इबादत खाना* में होने वाली बहस से उसके चिंतन में आमूल परिवर्तन हो गया और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सभी धर्मों में एक तत्व की ही समानता है और इसके पीछे एक ही तर्क भी है। देखिए उप-भाग 17.3.2

3) देखें उप-भाग 17.3.2

4) देखें उप-भाग 17.3.3

बोध प्रश्न-3

1) देखें उप-भाग 17.3.4

2) देखें भाग 17.4

17.9 संदर्भ ग्रंथ

आलम, मुज़फ़्फ़र, (2009) 'द मुग़ल्स, द सूफ़ी शेख़्स एंड द फ़ॉर्मेशन ऑफ़ अकबरी डिस्पेंसेशन', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़,* 43:1, पृ. 135-174.

अली, अतहर, 'अकबर एंड इस्लाम (1581-1605)', *सोशल साइंटिस्ट,* अंक 232-233, पृ. 123-134.

अली, अतहर, (1980) 'सुलह-ए कुल एंड रिलीजियस आयडियाज़ ऑफ़ अकबर', *प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस,* 41, पृ. 326-339.

हसन, एस. नुरूल, (1943) 'द महज़र ऑफ़ अकबर्स रेन', *जर्नल ऑफ़ द यू पी हिस्ट्री सोसायटी,* भाग xvi, जुलाई, पृ. 125-137.

ख़ान, इक़्तिदार आलम, (1968) 'द नोबलिटी अंडर अकबर एंड द डेवलपमेंट ऑफ़ हिज़ रिलीजियस पॉलिसी', *जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड,* अप्रैल, नं. 1/2, पृ. 29-36.

ख़ान, इक्तिदार आलम, (1992) 'अकबर्स पर्सनालिटी ट्रेड्स एंड वर्ल्ड आउट्लुकः अ क्रिटिकल रिअप्रैज़ल', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग. 20, नं. 9/10, सितम्बर-नवम्बर, पृ. 16-30.

ख़ान, इक़्तिदार आलम, (2019) 'अकबर्स *रिलीजियस पॉलिसी* इन द अर्ली फ़ेज़ ऑफ़ हिज़ रेनः अ कॉम्पलेक्स स्टोरी', *स्टडीज़ इन पीपल्स हिस्ट्री,* भाग 6.1: 70-77.

कृष्णमूर्ति, आर., (1961) *अकबरः द रिलीजियस आस्पेक्ट* (बड़ौदाः महाराजा सियाजीराव विश्वविद्यालय ऑफ बड़ौदा प्रेस).

मूसवी, शीरीन, (2017) 'अकबर्स एंटरप्राइज़ ऑफ़ रिलीजियस कंसिलिएशन इन द अर्ली फ़ेज़, 1561-1578: स्पांटेनियस ऑर मोटिवेटेड', *स्टडीज़ इन पीपल्स हिस्ट्री,* भाग 4.1: 46-52.

निज़ामी, के. ए., (2009) *अकबर एंड हिज़ रिलीजन* (दिल्लीः इदारा-ए अदबियात-ए दिल्ली).

रेज़ावी, सैय्यद अली नदीम, (2008) 'रिलीजियस डिस्प्यूटेशंस एंड इम्पीरीयल आयडियोलॉजीः द पर्पज़ एंड लोकेशन ऑफ़ अकबर्स इबादतख़ाना', *स्टडीज़ इन हिस्ट्री,* 24. 2, नवीन सीरीज, पृ. 195-209.

रिज़वी, एस. ए. ए., (1987) *द वंडर देट वाज़ इंडिया.* (लंदनः सिडविक एवं जैक्सन लिमिटेड).

शर्मा, एस. आर. (1940) *रिलीजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्परर्स* (बॉम्बेः एशिया पब्लिशिंग हाउस).

स्त्रूसैंड, डगलस. ई., (1999) *द फ़ॉर्मेशन ऑफ़ मुग़ल एम्पायर* (नई दिल्लीः ऑक्स्फ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

त्रिपाठी, आर. पी., (1956) *द राइज़ एंड फ़ॉल ऑफ़ द मुग़ल एम्पायर* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

त्रिपाठी, आर. पी., (1973) *सम आसपेक्ट्स ऑफ़ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

17.10 शैक्षणिक वीडियो

अकबर्स रिलीजियस व्यूज़
https://www.youtube.com/watch?v=dal3YsMaOQU

अकबर्स रिलीजियस आइडियाज़
https://www.youtube.com/watch?v=0CvMQILCIBo

रिलीजन एंड द मिडिवल इंडियन रूलर्स-V: अकबर सुलह-ए कुल
https://www.youtube.com/watch?v=7ueh04cSeK4

सुलह-ए कुलः फ्रॉम 16th सेंचुरी टिल डेट
https://www.youtube.com/watch?v=Ul_k3AJW8Uc

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY